Chapter-5

पंचम अध्याय

करुणासागर की रचनाओं का दार्शनिक पक्ष

पंचम अध्याय

करुणासागर की रचनाओं का दार्शनिक पक्ष

पृष्ठभूमि :-

`कायम पंथ` के आद्य संस्थापक संत- कवि करुणासागर अखा परंपरा के संत जीतामुनि द्वारा दीक्षित थे । अखा की ज्ञानमार्गीय परंपरा का संबंध विशेषत: कबीर-परंपरा से अनुस्यूत है । गुजरात के अनेक संत कवियों ने कबीर साहब का नाम गुरु के रूप में बड़े आदर के साथ अपनी वाणी में लिया है । करुणासागर ने भी कबीर साहब के नाम का उल्लेख सदगुरु के रूप में किया है --

चकित भये सदगुरु जबी, साम्रथ साहेब कबीर । [1]

डॉ. रामकुमार गुप्त ने [2] अपने शोध प्रबंध में ओड के किसी कृष्णस्वामी द्वारा करुणासागर को दीक्षित ठहराया है, किन्तु डॉ. कांतिकुमार भट्ट ने [3] उन्हें जीतामुनि के शिष्य के रूप में दिखाया है । इससे यह विदित होता है कि करुणा-सागर कबीरदास द्वारा प्रवर्तित एवं गुजरात में अखा द्वारा प्रस्थापित ज्ञानमार्गीय चिंतन प्रणाली के संत हैं । इन्होंने कबीर साहब के ज्ञानमार्ग के तीन सिद्धांतों का सूत्रात्मक रूप में स्वीकार करके अपने `कायम पंथ` की आधारशिला डाली । इस तथ्य की ओर इन्होंने संकेत करते हुए कहा है -

अर्वखर्व गति अगम ज्यों, उचरे ज्ञान कबीर ।
`न्हे अक्षर, ` ` घर रेहेत ` ही ` सार शब्द ` रखे तीर ।।
पंचम स्वसंवेद- कंद । - साखी-36

प्रस्तुत पंथ को `कैवल ज्ञान-संप्रदाय`, `संत् केवल पंथ` या

---

1. पंचम स्वसंवेद - कंद-1 - साखी 39.
2. गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन- पृ. 180.
3. गुजरात में कबीर परंपरा - पृ. 196.

`कायम पंथ` भी कहते हैं । प्रस्तुत पंथ का मूल मंत्र है- ॐ आद्य सकृत स्वराज करुणेश केवल नमामी `। इस पंथ का उपास्य `सत केवल` मात्र है जो सगुण तथा निर्गुण से परे है । `सत केवल` कबीर का ही `सत् पुरुष` है । अतएव वे अपनी दार्शनिक प्रस्थापनाओं में किसी न किसी रूप में कबीर से अवश्य ही प्रभावित ज्ञात होते हैं । इस बात का समर्थन डॉ. कांतिकुमार भट्ट ने भी किया है - `इस पंथ के प्रवर्तक कुबेरदास ने कबीर वाणी के मूल तत्त्वों का आधार लिया है । `सत्पुरुष` को सत् केवल नाम दिया गया हो` [1] अपने `पंचम स्व संवेद` ग्रंथ में करुणासागर ने कबीर की भाँति स्वानुभूतिमूलक दार्शनिक तथ्यों की अनन्य महिमा का स्वीकार करते हुए चार वेदों का विरोध किया है, साथ ही राम और कृष्ण को ब्रह्म स्वरूप में स्वीकृत न कर उन्हें अवतारी बताकर उनसे परे की परमोच्च अज्ञात सत्ता को `केवल कर्ता`, `निज कर्ता` या `सत केवल` जैसी संज्ञाओं से अभिहित किया है ।

आलोच्य `सत केवल ज्ञान मार्ग` वस्तुतः आचार्य शंकर द्वारा प्रस्थापित अद्वैतवाद का ही दूसरा रूप है । इस मत की सैद्धांतिक प्रस्थापनाओं में इसीलिए आचार्य गौडपाद का अजातवाद और शांकराद्वैतवाद के वैचारिक तत्त्वों का विनियोग हुआ है । हाँ, इतना अवश्य है कि संत काव्य स्वानुभूतिमूलक विचारों का दोहन होने के कारण अपने निजी दर्शन-पथ में नवीन एवं वैशिष्ट्यमूलक ज्ञात होता है । संत स्वभावतः मनमौजी, अल्हड़ और फक्कड़ होने के कारण किसी प्रकार के पूर्ववर्ती मार्ग या लीक के कायल नहीं थे । उन्होंने वेदोपनिषद द्वारा कथित बातों की अपेक्षा आँखों द्वारा देखी, स्वात्म द्वारा अनुभूत बातों पर ही सर्वाधिक बल दिया है । इसका मतलब यह नहीं कि उन्होंने शास्त्रोक्त बातों को माना नहीं है । अनेक शोधार्थियों द्वारा यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो गया है कि वेदों की अपेक्षा निर्गुणमूलक संत-साहित्य पर विशेषकर उपनिषदों का प्रभाव अधिक पड़ा है, फिर भी वे अपनी दार्शनिक पकड़ और सूझ-बूझ के पथ में अपनी ही राह के अकेले राही दिखाई देते हैं । संत कवि करुणासागर

---

1. गुजरात में कबीर परंपरा- पृ. 232.

भी इस तथ्य के अपवाद नहीं हैं । वे बहुश्रुत, यायावरी होने के उपरांत वेद-वेदांतादि के प्रकांड विद्वान भी थे । इन्होंने उपनिषदों के ज्ञान को निजी दर्शन के रंग में रंगायित कर ` सत केवल ` या सकर्तावाद की प्रस्थापना की है । सिद्धांत की दृष्टि से इसमें अनेक प्रकार से स्व द्वारा प्रतिपादित अद्वैत मत का ही निरूपण किया गया है । यहाँ यह कहना अधिक उचित होगा कि प्रस्तुत ` सत कैवल ` संप्रदाय के सिद्धांत शंकरानुमोदित अद्वैत ज्ञान मार्ग का ही एक नवीन रूप है । डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी ने भी आलोच्य कवि की दार्शनिक प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्टत: कहा है कि " ` सत केवल ` परब्रह्म सर्वव्यापी, अनादि एवं अनंत है । वह एक ही परम सत है, जो नाम-रूप तथा सगुण-निर्गुण से परे है । प्रस्तुत दृश्यमान जगत उससे भिन्न नहीं है, पिंड, ब्रह्मांड और ईश्वर ये तीनों की सत्ताब्रह्म से पृथक स्वरूप में भासित होती है । ये सिद्धांत कैवलाद्वैत के हैं और करुणासागर ने भी अपने ग्रंथों में अनेक बार भिन्न भिन्न रूप से इन्हीं सिद्धांतों का स्पष्ट और सीधा प्रतिपादन किया है । " [1]

आलोच्य कवि करुणासागर वेद, उपनिषद, षड्शास्त्र, पुराण, भागवत, गीतादि ग्रंथों के अध्येता एवं प्रकांड पंडित थे, किंतु इन्होंने उक्त शास्त्रों की खटपट में न पड़, कहीं कहीं उनका विरोध करके अपने निजी सिद्धान्तों की प्रस्थापना पर ही सर्वाधिक बल दिया है -

ग्रंथनी अनेक मत उत इत जीत तीत,
खट दरशन खटपट ही करतु है,
सुनत सुनत अति भिन्न भिन्न होत मति,
कोई कहे काउ, कोई काउ कु कहतु है ।

कैवल विलास- अंग 27-3,4

इस प्रकार श्रुति गुह्य ज्ञान को उन्होंने कबीर की भाँति ही सुंदरतम रूप में जगत के सन्मार्ग-दर्शन हित प्रचारित और प्रसारित किया है । ` सत कैवल ` के स्वरूप की सच्ची झाँकी प्रस्तुत करने की दिशा में आलोच्य कवि ने अपनी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक साधना पद्धति को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है । इसका विस्तृत

---

1. अखो अने मध्यकालीन संत परंपरा-पृ. 220

एवं विशद अध्ययन यहाँ प्रथम बार ही प्रस्तुत किया जा रहा है ।

संत कवि करुणासागर द्वारा निरूपित ब्रह्म संबंधित, दार्शनिक सिद्धांत को परखने से पूर्व यहाँ अद्वैत दर्शन संबंधित गौड़पादाचार्यजी के अजातवाद, शांकरा-द्वैतवाद एवं उपनिषदों के अद्वैतमूलक विचारों को विशेषकर देख लेना आलोच्य विषय की दृष्टि से अधिक उपयुक्त होगा ।

भारतीय अद्वैत दर्शन के सबल प्रतिस्थापक गौड़पादाचार्य एवं शंकराचार्य ने तत्संबंधित क्रमशः अजातवाद और मायावाद या अद्वैतवाद की स्थापना की है । गौड़पादाचार्य ने मांडूक्योपनिषद पर आधारित 215 कारिकाओं में अद्वैत दर्शन की जो व्याख्या की है, उसे ही गौड़पादाचार्य का अजातवाद कहा गया है । उन्होंने हिरण्यगर्भ, ईश्वर तथा जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं से विलक्षण तुरीय की कल्पना की है, जिसे ओंकार का चतुर्थपाद कहा गया है । उनके अनुसार तुरीय ब्रह्म अद्वैत रूप, प्रकाश रूप और सर्वव्यापी है ।[1] इस अद्वैत तत्त्व के लिए उन्होंने आत्मा, ब्रह्म और आकाशादि शब्दों का प्रयोग किया है । उनके अनुसार कोई भी वस्तु कभी उत्पन्न नहीं होती । वे आत्म तत्त्व के अतिरिक्त अन्य पारमार्थिक सत्य का स्वीकार नहीं करते । माया के कारण ही प्रत्यक्ष जगत है । इनकी माया-वाद संबंधी धारणा मूलतः तीन सिद्धांतों पर स्थित हैं -

1 आत्मा आत्मा के द्वारा ही आत्मा की कल्पना करती है ।[2]

2 अद्वैत तत्व में भेद पैदा करने वाली शक्ति माया है ।

3 मन ही द्वैत भाव का कारण है ।[3]

गौड़पादाचार्य वस्तुतः अवच्छेदवादी थे । उन्होंने जीव और ब्रह्म का अंतर ठीक उसी प्रकार माना है, जिस प्रकार वायु घट के अंदर भी है और बाहर

---

1. अद्वैत सर्व देवः तुरीयो विभूः स्मृतः

मांडूक्य कारिका- 1-10, 1-16

2. कल्पयति आत्मानः आत्मानम् आत्मा- मांडूक्य कारिका 2-1

3. मनोदृश्यं इदं द्वैतम- मांडूक्य कारिका- 3-11.

भी । तत्वतः दोनों एक ही है । घट का बाह्य आकार ही इस व्यावहारिक भेद का कारण है । उनके अनुसार ` ओम ` भी ब्रह्म का ही स्वरूप है । अतः जो ओंकार का ज्ञाता है, वह ब्रह्म का भी ज्ञाता है ।[1] डॉ. रामकुमार गुप्त ने[2] गुजरात के संत कवियों पर प्रस्तुत अजातवाद के प्रभाव को निम्नांकित रूप से व्यक्त किया है --

1 ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा तत्व नहीं है ।

2 विश्व के नाम रूपादि की प्रतीति मन की सृष्टि है ।

3 कार्य और कारण का भेद भी भ्रमात्मक है ।

4 माया अजन्मा है, अतः इन संतों ने उसी रूप में माया को ग्रहण किया है ।

5 प्रणव के रूप में शब्द ब्रह्म की साधना भी अजातवाद से प्रभावित है ।

शंकराचार्यानुसार अद्वैतवाद

शांकराद्वैतवाद में ब्रह्म का विचार दो दृष्टियों से हुआ है -व्यावहारिक दृष्टि से और स्वरूप-लक्षण की दृष्टि से । व्यावहारिक दृष्टि से जगत को सत्य मानकर ब्रह्म को इसका मूल कारण, सृष्टि कर्ता, पालक और संहारक बताया गया है । स्वरूप-लक्षण की दृष्टि से ` सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ` अर्थात् ब्रह्म सत्य और अनंत ज्ञान-स्वरूप है । शंकराचार्य ने इसी को परब्रह्म माना है । यही निर्गुण, निराकार और निर्विशेष ब्रह्म है । सगुण ब्रह्म मायिक है, निर्गुण ब्रह्म पारमार्थिक । वह सर्व उपाधियों से रहित है ।[3] मायावच्छिन्न होने पर यही ब्रह्म सगुण ब्रह्म या ईश्वर कहलाता है । दोनों ब्रह्म वास्तव में एक ही है, किन्तु अपेक्षा से वह ‖ परब्रह्म ‖ ईश्वर है और निरपेक्ष रूप से परब्रह्म ।[4] ब्रह्म काल और स्थान की सीमा से परे है । इसको प्राप्त करने का साधन ज्ञान है । यह दृश्यमान जगत

1.मांडूक्य कारिका -1-27.

2.गुजरात के संतों ही हिन्दी साहित्य को देन, पृ. 214,215

3. भारतीय दर्शन - चट्टोपाध्याय दत्त-पृ. 246.

4. इंडियन फिलोसोफी - भाग 2- डॉ. राधाकृष्णन - पृ. 537, 538.

अपने आप ही निर्मित नहीं हो सकता, यह परब्रह्म पर आधारित है, परन्तु इसकी परिवर्तनशीलता से ब्रह्म की नित्यता प्रभावित नहीं हो सकती । निर्गुण ब्रह्म ही समस्त संसार का आधार है ।[1] जीव भी ब्रह्म के समान ही अद्वैत है । अंतःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही जीव है, जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है । माया के कारण ये दो दिखाई देते हैं । शंकराचार्य के अनुसार माया ईश्वर से अभिन्न है, वह अनादि और अच्छेद्य है । वह विवर्त की सृष्टि करती है । इस मायिक लीला को अज्ञानी सत्य समझ लेते हैं ।[2] शंकर ने ` ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ` अर्थात ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या माना है ।

उपनिषदों में अद्वैत दर्शन

उपनिषदों में अद्वैत की ब्रह्म, जीव और जगत संबंधी मान्यताओं को अनेक रूपों में देखा जा सकता है । वस्तुतः उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ही निर्गुण ब्रह्म या अद्वैतमूलक दर्शन है । उपनिषदों के अद्वैतसूचक कुछ वाक्य इस प्रकार है -

1 अयमात्मा ब्रह्म - बृहदारण्यक - 2-5-19.

2 अहं ब्रह्मास्मि - वही, 1-4-10.

3 तत्वमसि - छांदोग्य - 6-7-7.

4 सर्वं खल्विदं ब्रह्म - वही 3-14-1.

इनमें ब्रह्म को अनिर्वचनीय कह कर केवल उसे चिंतन की अपेक्षा अनुभूति का विषय ही माना गया है । कठोपनिषद में कहा गया है कि ब्रह्म मन, वाणी और चक्षु से अगोचर है ।[3] मुंडक का कथन है कि वह चक्षु , वाणी, तप कर्मादि का विषय न होकर ज्ञान से संयुक्त सतत ध्यान का विषय है ।[4]

---

1. ए सोर्सबुक इन इंडियन फिलोसोफी-डॉ. राधाकृष्णन-पृ. 507.
2. भारतीय दर्शन- चट्टोपाध्याय दत्त-पृ. 230.
3. नैव वाचा न मनसा प्राप्तुंशक्यो न चक्षुषा, 3-2-12.
4. मांडूक्योपनिषद - 3-1-8.

यह कहना अनुचित न होगा कि अद्वैत दर्शन के उपर्युक्त प्रमुख सिद्धांतों का प्रभाव किसी न किसी रूप में भारतीय संत कवियों पर पड़ा है । संत कवियों ने दार्शनिक सिद्धांतों को आत्मानुभूति के निजी रंग से रंगकर ही ग्रहण किया है । वेदोपनिषदों से प्रभावित होते हुए भी उन्होंने निर्गुण दर्शन के क्षेत्र में दादू, राधा-स्वामी, निर्वाण और सतकैवल जैसे अनेक पंथों और संप्रदायों की स्थापना की है । इससे इनके दार्शनिक अवधारणाओं के स्वरूप में पूर्ववर्ती दर्शन परंपरा से साम्य होते हुए भी उनके वैशिष्टय को स्वतः देखा जा सकता है । औपनिषदिक विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में गुजरात की संत परंपरा पर प्रकाश डालते हुए डॉ. अंबाशंकर नागर ने इस बात पर बल दिया है कि " गुजरात की संत परंपरा भारतीय संत परंपरा की ही अविच्छिन्न कड़ी है । ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा छांदोग्य, वृहदारण्यक आदि उपनिषदों से उद्भूत यह ज्ञान-गंगा सिद्धों, नाथों तथा रामानंद, कबीर आदि संतों की भाव-धारा से समृद्ध होती हुई अंतःसलिला की भाँति प्रवाहित होकर गुजरात में नरसिंह युग में प्रकट हुई । गुजरात के संतों की यह विशेषता है कि वे ब्रह्म के सगुण- निर्गुण स्वरूप एवं षड्दर्शनों की खटपट में न पड़कर प्रधानतया तर्कातीत आत्मानुभूति एवं ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की दिशा में उन्मुख हुए हैं । " [1]

कायम पंथ के दार्शनिक सिद्धांत भी इस तथ्य के द्योतक ही हैं । अतः यहाँ करुणासागर के दार्शनिक विचारों को सैद्धांतिक एवं साधनात्मक पक्षों के आधार पर समीक्षित किया जा रहा है ।

सैद्धांतिक पक्ष - सकर्तावाद - ब्रह्मनिरूपण

करुणासागर का आविर्भाव सगुण एवं निर्गुण के आशय को स्पष्ट करते हुए केवल कर्ता पद का सम्यक ज्ञान कराने के निमित्त हुआ है -

तेही करतारन के अभिप्रायन, न्याय देखावन सारुं ।
कृता कृत अकृत नवेरन, कारन मुज अवतारुं ।।

सकृत चिंतामणि-अंग- 8

---

1. गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी-भूमिका- पृ. 4.

करुणासागर की दार्शनिक विचारधारा के मूल में यही सकर्तावाद निहित है । अतः इसी मत को सगुण एवं निर्गुण विचारधारा से परे माना गया है । इस संदर्भ में इनका कथन है कि -

लोक सकल तो करीत उपासन, पावन गुण अवतारु ।
पुनि राखत हे लक्ष ब्रह्म के, ते नहि भव सजनारु ।।
विश्वभ्रम विध्वंस निधि ग्रंथ- अंग-19-4

इस दृष्टि से सगुण ब्रह्म एवं निर्गुण ब्रह्म दोनों ही सृष्टि के कर्ता नहीं हैं । यथा- ` सगुण सकल अवतारन के तन, निर्गुण ब्रह्म अकर्ता ।
एही उभयन अविलोक करन में, नहि कोइ सृष्टि समरता ।।
विश्वभ्रम विध्वंस निधि ग्रंथ- अंग- 38.

प्रस्तुत सिद्धांत ब्रह्मवादियों के मत को संशययुक्त मानकर सकर्तावाद की स्थापना करता है । इस दृष्टि से निर्गुण ब्रह्म को अकर्ता माना गया है, क्योंकि वह संकल्प-रहित होने से सृष्टि का कार्य करने में समर्थ नहीं है -

निर्गुण ब्रह्म अकरता अनुचीत, अंतस बिनु संकल्प के
तो आ भव के करनहारको, उपजे कीनु कलपके ।।
सकृत चिंतामणि-अंग-8-2

केवल कर्ता ब्रह्म अर्थात सकर्ता ब्रह्म और अकर्ता [व्यापक ब्रह्म] कार्यभेद से अलग अलग हैं । ब्रह्मज्ञानियों ने व्यापक ब्रह्म को ही अंतिम पद माना लिया है । सकर्ता ब्रह्म अकर्ता ब्रह्म की भाँति सर्वत्र व्याप्त नहीं है, किन्तु केवल कर्ता का ब्रह्मरूप परम प्रकाश ही सर्वत्र व्याप्त है और उसीमें विश्व के सभी अंश निवास करते हैं ।

यथा - ऐसे ही ब्रह्म अखिल पद, सबके अगम उपास,
जे ही तत आद्य अनाद्य के, निजपति परम प्रकाश ।
परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु-केतु-6

तथा- पण व्यापक कर्ता नहि,अरस ही अटल ठेकांन ।
परम प्रकाश सतंतर, जिन में अंश जहांन ।
प्रकाश सो पति परम के, ताही मरम नहि जान ।।
अचरत सागर स्कंध-6

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्गुण ब्रह्म स्वयं प्रकाशक नहीं है , वह तो परम प्रकाश मात्र ही है । साथ ही प्रकाश प्रकाशक से भिन्न नहीं रहता । प्रकाशक के साथ ही उसका अस्तित्व भी रहता है, इसीलिए प्रकाशक के स्वरूप के आधार पर ही ब्रह्म को अजर, निराकार, निर्विकार , उपाधि रहित आदि विशेषणों को जोड़कर देखा गया है । इतना होने पर भी प्रकाशक [सकर्ता ब्रह्म] के संपूर्ण गुण या लक्षण प्रकाश में नहीं हो सकते । सूर्य के प्रकाश में गरमी होती है , किंतु सूर्य की भाँति दाह क्रिया प्रकाश नहीं कर सकता । तात्पर्य यह कि निर्गुण सिद्धांत अथवा ब्रह्म सिद्धांत द्वारा प्रतिपादित व्यापक ब्रह्म के भावाभाव रहित और केवल प्रकाशक का प्रकाश मात्र मानने के कारण अकर्ता मानकर उससे पूरे परब्रह्म की कल्पना ` निज कर्ता ` या ` केवल कर्ता ` के रूप में की गई है । यही परब्रह्म इस मत का प्रतिपाद्य है ।

यहाँ सगुण ब्रह्म एवं निर्गुण ब्रह्म को विजाति-पक्ष के रूप में देखा गया है और इसीलिए अंश या आत्मा को भी प्रस्तुत विजाति पक्ष [सगुण व निर्गुण ब्रह्म] का अंश न मानकर सकर्ता ब्रह्म का अंश माना गया है । यथा --

बिनहु सजात सिद्धांत सकल जेही , सो न पितु अपने ही ।
बिनु पितु के परमाविक जेही पद, कुन कब कीये सनेही ।।
सकृत चिंतामणि -अंग-8-34

इससे यह तात्पर्य है कि विजाति-पक्ष आत्मा का पिता नहीं होने के कारण, उसकी उपासना से मुक्ति और स्नेह नहीं मिल सकता ।

सकर्ता नाम निरूपण

प्रस्तुत सकर्ता सिद्धांत में परब्रह्म या निजपति के पाँच विशेषण कल्पित किये गये हैं - आद्य, सकर्ता, स्वराज, करुणेश और कैवल । आद्य अर्थात् सर्व प्रथम कर्ता स्वयं ही था और उससे पहले कोई नहीं था । सकर्ता अर्थात् अणु से लेकर विश्व के चराचर घाटों में निवास करने वाले अंशों का कर्ता वह स्वयं ही

है । स्वराज अर्थात् आदि से ही वह निज सृष्टि का अधिकारी पुरुष है । करुणेश अर्थात वह स्वयं सभी जीवों पर करुणा करता है, सभी को सुख देकर उनका पालन पोषण करता है । कैवल अर्थात कर्ता ` वल ` या आंटी रहित है ।

सकर्ता धाम का वर्णन

प्रस्तुत मत के अनुसार निज कर्ता का स्थान उसके कृतित्व के मध्य स्थित होकर जीवों को उनके शुभाशुभ कर्मों के अनुसार फल देना है और स्वयं साक्षी रूप रहना है । इस दृष्टि से कर्ता सर्वज्ञ और सर्वदेशीय है ।

सत केवल की दो वृत्तियाँ

अनंत ब्रह्मांड के समस्त जीव-जंतु, ब्रह्मा से लेकर चीटी तक एवं पुरुष-प्रकृति सहित समस्त अंशों की वृत्तियों एवं प्रवृत्तियों की एकता निज सकर्ता सत केवल की ` प्रकाश ब्रह्मवृत्ति ` के साथ जुड़ी हुई है । प्रस्तुत वृत्ति कर्ता के बाह्य चक्षु का मुख्य विषय है । इसी वृत्ति के माध्यम से कर्ता को प्रत्येक जीव के कर्मों का ज्ञान होता है और तदानुसार उसे वह कर्मों का फल देता है । सकर्ता इसी बाह्य वृत्ति रूप दिव्य चक्षु से ब्रह्मांड के प्रत्येक रूप को देखता है और उसकी दूसरी अंतरवृत्ति के माध्यम से समस्त अंशों को उत्पन्न करता है ।

सत कैवल-परब्रह्म

करुणासागर मूलतः अजातवादी या ब्रह्मवादी थे । अखा, निरांत और सागर महाराज जैसे गुजरात के अजातवादियों की भाँति ही उन्होंने भी एक ही अनंताद्वैत परब्रह्म को ही ` सत ` मानकर कायम पंथ की स्थापना की । इस दृष्टि से ` सत केवल ` परब्रह्म सर्वव्यापी, सर्वातीत, अनादि और अनंत है । एक ही ` परम सत ` नाम रूप एवं सगुण तथा निर्गुण से परे है । प्रस्तुत दृश्यमान जगत इससे भिन्न नहीं है वरन् पिंड, ब्रह्मांड और ईश्वर की त्रिपुटी का भेद कल्पित होने से वस्तुतः परब्रह्म ही है । माया के आवरण के कारण ही इन तीनों की सत्ता ब्रह्म से भिन्न स्वरूप में दृश्यमान होती है ।

करुणासागर ने केवलाद्वैत के सिद्धांतों का निरूपण अनेक रूपों से अपनी रचनाओं में किया है । ` सत कैवल ` - परब्रह्म के स्वरूप के बारे में वे कहते हैं -

1 चैतन्य ब्रह्म भरपूर ब्रह्मांडमां, नीर मध्य कुंभ ज्यम नीर भरियो,
ब्रह्ममें इम ब्रह्मांड भरपूर है, बाहिर भीतर सकल दरियो ।
हंस तालेवा-अंग 11-1

2 कैवल अंश सपुर, दूरते दूर परावर
घट घट प्रत्ये निवास ,वास वित सकल चराचर
ते अंते मध्य आद्य स्वाद्य सनातन सोइ
स्थावर जंगम जात, चलीते इनते सब कोई
ज्यां ज्यम जेवी जुक्त मुक्त त्यां तेवो म्हाले
प्राय अलखनो अलख, खलक थइ खेले ख्याले
खेले ख्याले खलक, अंश अविनाश कहावे
निरालंब निर्लेप, लेप होइ कुबेर कसावे
विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा 12-1,2,3,4

विश्व और विश्वेश दोनों को एक ही परब्रह्म का स्वरूप मानते हुए वे कहते हैं -

तम सरखा तो एक ज तमे, विश्व बरफ अभी तुज झमे,
जेने उर अनुभव होय सार, ते पामे कोई गति तुमार ।
अगाध बोध- अंग 24-5

जीव, शिव और ईश्वर माया के आवरण के कारण ही भिन्न रूप से प्रतीत होते हैं, वस्तुतः वे एक ही हैं । माया का आवरण दूर होने पर सब ब्रह्म रूप से एकरूप हो जाते हैं । देखिए -

ना हीं तो जीव ने शिव इश्वरना,पक्ष जोता तो प्रकार न्यारा,
जंत जंजालना जाल में आवर्या, ईश्वर विश्व करनार हारा ।
सायक एक ने नीर जाति बहु, सर्वनु तोय ते एक प्रीछे,
कूप नदी जल पोखर वहेकला, भूमि विकार भी भिन्न दीसे ।

अवनि विलाय तो एक सरखु सबे, अर्णव थी नहीं अलग कोई,
त्यम आंहा पंड ब्रह्मांड प्रकृतनो, वासना व्रजणी होय परते ।
जीवने शिव इश्वरनुं एकता, पक्षपाती नहीं समन सरले,
कहे कुबेर श्रीफल साकर तणुं, गोटली चोटली सहित फाव्युं ।
हंस तालेवा-अंग 34-1 से 5

इसी प्रकार इन्होंने एक ही परम तत्त्व को नाम रूपात्मक ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु में अद्वैत रूप से देखा है । लोहे के पर्वत से बने हुए एरण, हथौड़ी और साणसी जैसे साधन मूलतः एक ही लोह तत्त्व से निर्मित हैं, परंतु उपाधि के कारण वे द्वैत रूप में दृष्टिगत होते हैं । परमार्थिक दृष्टि से इनमें पृथकता नहीं है --

जेम गीरी लोहनो तेजथी होत हे, साणसी, हेरण्य ने हथोरी,
घाट अनेक घडाय बहु ते थकी, सोज लावी परवत केरी ।
तेम कैवल नग इछते हवी तवी, सोहं ॐकार एरण्य हथोडी,
गुण संजुक्त प्रकत ग्रही सांणसी, अनुभवकर मम रचीत पेहेली ।
हंस तालेवा - अंग 43 - 2,3

परब्रह्म रूपी लोह पर्वत से सोहंग रूप हथोड़ी और ॐकार रूप एरण्य तथा प्रकृतिरूप साणसी का निर्माण हुआ है । करुणासागर ने एक ही अद्वैत ब्रह्म की एकता को निरूपित करने के लिए लोह पर्वत और उसकी अनेक वस्तुओं की भाँति शक्कर का श्रीफल उसकी गुठली और चोटी, घी की बनी हुई पुतली और उसके सभी अंग, कूप, तालाब, सरिता और सागर में निहित जल एक ही है इसी प्रकार ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है - आदि दृष्टांतों का प्रयोग बार बार किया है । समस्त विश्व की प्राणशक्ति एक मात्र `सत कैवल` ही है । प्रस्तुत द्वैत भाव का मूल कारण माया अथवा अज्ञान ही है । इस संबंध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

। भिन्न भिन्न भेद सब त्यागी, अविगत एक लखावो ।[1]

---

1. भजन सागर- भाग - 1 पृ. 59.

2 द्वैत तणो करजे संहार, अद्वैत पदनो कर तुं आहार । [1]

3 धे धाता पद छोड़ीने, अद्वैत उर लावो
कहे कुबेर दूजो नहि, आप आपने धावो । [2]

4 जल का कुंभ, कुंभ जल भर्या, सब साहेर समाना
अंतर आवरण मिट गया, प्रगट्या निज ज्ञाना । [3]

5 दो दो लोचन सरवकु, निरखन कु पद छिन्न
चतुर लोचन विद्या तणा, भासत भिन्न अभिन्न । [4]

ब्रह्म की अनिर्वचनीयता

ब्रह्म का स्वरूप कैसा है और वह क्या है, यह कोई नहीं जान सकता । ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निरंजन, निर्विशेष आदि होने के कारण उसे किस रूप में समझा जाय यह कहना अत्यंत कठिन है, इसीलिए उसके संदर्भ में श्रुतियों ने 'नेति नेति' कहकर उसकी अनिर्वचनीयता प्रकट की है । करुणासागर ने भी अनेक रूपों से परब्रह्म की अनिर्वचनीयता को व्यक्त किया है । उसे अदृष्ट, अलेख, अक्षरातीत, संख्यातीत, निराकार, अविनाशी, अकल, अव्यक्त, अनामी, आद्य, अमापी, अरूप, अविगत आदि कहा है । यहाँ कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

क. छाया माया जांहां नाहि, रूप रंग नहि रेख,
दृष्टि में आवे नहि, अदृष्ट, आद्य अलेख ।
निराकार निरधार है, निरगुन रूप निदान,
अव्ये अविनाशी आद्य है परमीत पुरुष पुरान ।
जाहां इक्षण ऐके नहि रहित आलंबन वास,
जेसे दीनकर भंड में, एक अनेक उजास । [5]

---

1. भजन सागर, पृ. 76. (भाग-1)
2. वही, पृ. 50.
3. वही, पृ. 51.
4. वही, पृ. 101.
5. वही, पृ. 95.

ख. जहाँ नहीं झलमल ज्योत समीप शीव वे,
खट अक्षरनी आद्य, लखे नहीं जीव वे ।
रह्यो अमापि आप अनामी नाम वे
कहे सत् कुबेर सोई निज धाम वे । [1]

ग. रूप रंग रेखा बीना मुरति,सुरत बुरत सोहाग वलजाँ,
अविगत अकल अवे अविनाशी, जाको है सकल परकाश । [2]

घ. अक्षरातीत अक्षर बीजु, जे ही पद अदबद सोय,
रहत सदा जमनो तम, अंक बीना गम गोय । [3]

च. सबके सरजन सोही पद, अंश अखिल निजतात
सर्वातीत सर्वज्ञ ही, जो नहि अंक लखात । [4]

ब्रह्म की व्यापकता एवं कर्तृत्व

वही एक ही कर्ता ब्रह्म कीट से ईश्वर तक सब में सन्निविष्ट है और सबसे न्यारा है । उदाहरणार्थ यहाँ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं --

1. भयो ब्रह्म भरपूर सतंतर श्याम वे,
तामे घाट अनंत धर्या बहु नाम वे,
सकल विश्वनो आप रहे किरतार वे,
कहे सत् कुबेर परानी पाखे । [5]

2. द्वैत बिना नहि हास विलासा
युगल मिल्ये पद पूज्य प्रकासा ।
प्रकृति पुरुष तन मूल अनादि,
अद्वैत इत भये सकल सवादि । [6]

---

1. भजन सागर, पृ. 161. (भाग-1)
2. वही, पृ. 214.
3. परम सिद्धांत कल्पतरु-केतु 3-83.
4. वही, केतु 5-45.
5. भजन सागर-भाग-1 ,पृ. 161.
6. वही, पृ. 88.

3. जल थल मांही आप है, धरणी गगन मोझार,
स्थावर जंगम आप है, आप सकल संसार ।[1]

4. पंड ही ब्रह्मांड इंड भासत ही खंड खंड ही,
कुबेर अद्वैत व्याप सो तो अनुस्यूत है ।[2]

वेदांतियों ने ब्रह्म को सर्वव्यापक कहा है । यहाँ कैवल ब्रह्म को सर्वव्यापक न मानकर उसके परम प्रकाश को प्रत्येक शरीर में व्याप्त माना गया है । यथा -

1. ए सहु बांध्या कारण कले, कैवल चेतनथी चलवले ।
तेमनुं व्यापक तो वगवगे, कैवल व्याप सकल तन लगे ।।

2. साम्रथ भेद पटंतर कह्युं, ब्रह्म हीर अव व्यापक रह्युं ।
कैवल अंस जीवन सर्वनुं, ब्रह्मा आद्य शक्ति ज्योतनुं ।।

3. माटे कैवल चकवे व्याप, आग्र, अंत मध्ये एक अमाप ।
सत कुबेर वेत्ता तेहना, करुणामये कैवलपद सना ।।

अगाध बोध-अंग 27-2,10,11

सृष्टि के अणु-अणु तथा कण-कण में परिव्याप्त ब्रह्म सर्वातीत, शब्दातीत और संख्यातीत होने के कारण अवर्णनीय एवं सबसे परे हैं । यही ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप और सकल ब्रह्मांड का एक मात्र कर्ता है और सभी अंश उसीसे समुत्पन्न होने के कारण वह अपनी रचना या कर्तृत्व के आदि, मध्य और अंत में समाया हुआ है । इसी संदर्भ में यहाँ कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं --

क. अंश उदीत कर्ता से, कर्ता नीज कैवल ।
आदि अंत मध जेहुन के, एकल मल अमल ।।

परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु-केतु 1-23.

---

1. तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि- तिथि- 12-2.
2. कैवल विलास- अंग 29-7.

ख. निज कर्ता कैवल कुल, प्रणव जाप बिनु देह ।
सद्चिद् आनंद परम पद, रहीत तत्व जीनु देह ।।
परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु - केतु -2-।

ग. अक्षरातीत अक्षर बीनु, जेही पद अदबद सोय ।
रहत सदा जमनो तम, अंक बीना गम गोय ।।
परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु - केतु 3-83.

घ. सबके सरजन सोहीपद, अंश अखिल निज तात ।
सर्वातीत सर्वज्ञ ही, जो नहि अंक लखात ।।
परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु - केतु-5-45

यद्यपि ` कायम पंथ ` में अवतारवादी विचारधारा का खंडन किया गया है, तथापि सोपाधिक ब्रह्म के रूप में अव्यक्त ब्रह्म को निरूपित किया गया है । यथा -

उपाधि के संग मीली दीसत उपाधिरूप,
तेल की तवाइमां ही चंद्र कु क्या ताप है ।
जेसे कूप नीर एक सीचत तरु अनेक,
स्वाद जाके मीष्ट मोला कटुक खटाय है ।
तेसे ही चैतन व्याप सरवांग सोहंग थाय,
कुबेर न दुजो कोउ गावत ही आप है ।
कैवल विलास- अंग 36-5,6,7

प्रस्तुत पंथ के अंतर्गत यह प्रतिपादित किया गया है कि ` निज कर्ता `, सभी देव, निरंजन, शक्ति ब्रह्मादि त्रिदेव कर्ता पद से रहित है । ` निज कर्ता ` ने बिना नारी संग से विश्व का निर्माण किया है । इस संदर्भ में प्रस्तुत विचारधारा ने अवतारवाद का खंडन भी किया है । अधोलिखित उदाहरण इसके प्रमाण हैं -

क. सो कर्ता चिनो रे भाई, बिन चिने परले सब जाइ ।
कहे कुबेर अनुप विचारी, ज्ञान न्यारा चिनो नर-नारी ।।
अगाध बोध -29-7

ख. बिन नारी जीने सकल उपाया, बहोरु घट घट आन्य समाया ।
नहि आया नहि जात जनाता, है ज्यों का त्यों नाथ सनाता ।।
अगाध बोध -29-6

ग. सगुण सकल अवतारन के तन, निर्गुण ब्रह्म अकरता ।
एही उभयन अविलोक करन में, नहि कोई सृष्टि समरता ।।
विश्वभ्रम विध्वंस निधि ग्रंथ- अंग-38-99

घ. निज करता अवतार धरत नहि, मरत लोक के चोले ।
जिनु चितवन से हवे सकल को, ते क्यों भव भर डोले ।।
विश्वभ्रम विध्वंस निधि ग्रंथ-अंग 25-8

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि करुणासागर ने स्वयं द्वारा प्रस्थापित ` सत कैवल ` संप्रदाय की सैद्धांतिक चिंतन प्रणाली के अनुरूप ही ब्रह्म संबंधी दार्शनिक विचारधारा का निरूपण किया है । इस दृष्टि से उनकी विचारधारा शांकराद्वैत दर्शन से कहीं कुछ रूप में भिन्न अथवा विरोधाभास परक रूप से भी परिलक्षित होती है । शांकराद्वैत में ब्रह्म को सर्वव्यापक माना है, यहाँ निज कर्ता [परब्रह्म] को न तो सर्वव्यापक माना गया है और न तो उसे अवतारी ही बताया गया है, वरन् उसके परम प्रकाश रूप निर्गुण ब्रह्म को सर्वव्यापक कहा गया है । शांकराद्वैत के अनुसार यही निर्गुण ब्रह्म सोपाधिक रूप से ब्रह्मांड की रचना करता है, किन्तु यहाँ पर प्रतिपादित किया गया है कि निर्गुण-ब्रह्म संकल्पादि से रहित होने के कारण सृष्टि कार्य के लिए समर्थ नहीं है । अतः यहाँ ` कैवल कर्ता ` अथवा ` निज कर्ता ` को ही बिना नारी या माया के समस्त ब्रह्मांड का निर्माता माना गया है । इस दृष्टि से निजकर्ता ब्रह्म सगुण और निर्गुण ब्रह्म से भी परे का ` पद ` है और इसी ब्रह्म का प्रतिपादन करुणासागर का परम साध्य है । देखिए --

` ते ` बिनु सजात सिद्धांत सकल जेही, सो न पितु अपने ही ।
बिनु पितु के परभाविक जेही पद, कुन कज कीये सनेही ।।

सकृत चिंतामणि- अंग 8-34.

तथा

ते ही करतारन के अभिप्रायन, न्याय देखावन सारू ।
कृता कृत अकृत नवेरन, कारण मुज अवतारू ।।

सकृत चिंतामणि-अंग-8-22

जीव

वेदांत के अनुसार जीव को ब्रह्म के समान ही अद्वैत माना गया है । अंत:करणावच्छिन्न चैतन्य ही जीव है, जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है । माया के कारण ही ये अलग दिखाई देते हैं । जीव जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति- इन तीन अवस्थाओं तथा अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय तथा आनंदमय- इन पाँच कोषों में प्राप्त होता है, परन्तु आत्मा का शुद्ध चैतन्य रूप इन तीन अवस्थाओं तथा पंच कोषों से परे है । जीव वास्तव में ब्रह्म रूप ही है, किंतु अज्ञान के कारण उसे अपने सच्चिदानंद ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान नहीं होता । ईश्वर सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है, किन्तु जीव अल्पज्ञ, लघु और क्षीण है ।[1] कबीर ने भी कहा है कि माया, भ्रम और अज्ञान के कारण जीव बंधन में रहता है, ज्ञान प्राप्ति के बाद तेज, तेज में विलीन हो जाता है -

संतो भाई आई ग्यान की आँधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उडांणी, माया रहै न बांधी .....

कबीर काव्य कौस्तुभ-सं. डॉ. बालमुकुंद गुप्त,
पृ. 51.

---

1. इंडियन फिलोसोफी - 2 डॉ. राधाकृष्णन, पृ. 608.

जीव के प्रकार

`कायम पंथ` के मतानुसार चार प्रकार के जीवों की कल्पना की गई है । उनमें से पहला जिज्ञासु, दूसरा मुमुक्षु, तीसरा अर्थार्थी और चौथा विषयी जीव होता है । कर्ता द्वारा उक्त चार प्रकारों के जीव उत्पन्न हुए हैं । इन चारों में से जिज्ञासु जीव को बुलबुले के समान, मुमुक्षु जीव को नमक के समान, अर्थार्थी जीव को आले के समान तथा विषयी जीव को मोती के समान कल्पित किया गया है । जिज्ञासु जीव कर्ता संबंधी ज्ञान उपलब्ध करने के साथ ही चेत जाता है और कर्ता की शरण में चला जाता है । मुमुक्षु जीवके साथ गुरु प्रथम मित्रता करता है, फिर उसे उपदेश करता है तब उसमें भक्ति के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है । उसे गुरु जन्म-मरण तथा चौरासी लक्ष योनियों के चक्कर एवं नर्क का भय दिखाता है, तब वह भयभीत होकर कर्ता की शरण में जाता है । विषयी जीव को अनेक प्रकार से समझाना पड़ता है फिर भी वह जंगली प्राणी की तरह जीवन व्यतीत करता है, तब गुरु उसे चमत्कार दिखाकर अपनी ओर आकर्षित करके परम पद तक पहुँचाते हैं ।[1]

प्रायः अद्वैतवादी संत कवियों ने जीव और ब्रह्म में एकता स्थापित की है । जीव अज्ञानी होने के कारण ब्रह्म को नहीं जान पाता । माया का आवरण सद्गुरु द्वारा हटने पर ही उसे ब्रह्म का ज्ञान होता है । जीव स्वभाव से बड़ा अभिमानी होने के कारण नाना प्रकार के कर्मों को करता हुआ उनके शुभाशुभ फलों को भोगता है, इसीलिए अज्ञानी जीव को सावधान करके सद्ज्ञान द्वारा परमानंद रूप ब्रह्म से मिलाने का उपदेश संत कवियों ने अपनी वाणी द्वारा दिया है । नामदेव जीव से कहते हैं -

जागि रे जीव कहा भुलाना,
आगे पीछे जाना ही जाना ।

संतसुधा सार- श्री वियोगी हरि, पृ. 48.

कबीर ने जीव-ब्रह्म की एकता को अनेक प्रकार से प्रतिपादित किया

---

1. सकृत परम प्रकाशमणि भाष्य-हिन्दी अनुवाद-पृ. 67-68.

है । जलाशय में जल से भरा हुआ कुंभ रखा जाय, कुंभ के बाहर भी वही जल है और भीतर भी । कुंभ फूटने पर बाहर-भीतर का जल एक होता है ।[1] नानक कहते हैं कि संसार में अनेक और असंख्य जीव हैं उनके कर्म और धर्म भी असंख्य हैं, परंतु उनमें एक ही तत्त्व विद्यमान है ।[2] दादू ने कहा है कि जीव अज्ञानी है और असत्य-भ्रम- में भटकता फिरता है ।[3] उनके मतानुसार वास्तव में परमात्मा एक है, वही सब में व्याप्त है ।[4] द्वैतभावना व्यर्थ है । अतः घट घट में राम है ।[5]

---

1. जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहरि भीतर पानी ।
   फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी ।।
   कबीर ग्रंथावली- सं. श्यामसुंदरदास, पृ. 80.
2. भीतरि एक अनेक असंख्य । करम धरम बहु संख असंख ।
   संतसुधा सार - वियोगी हरि - पृ. 282.
3. दादू जीव अयानां, झूठे भरमि भुलाना ।
   संतसुधा सार - वियोगी हरि - पृ. 431.
4. दादू एकै आतमा दूजा कोई नाहीं ।
   संत सुधा सार - वियोगी हरि, पृ. 465.
5. घट घट आतमराम
   संत सुधासार- वियोगी हरि, पृ. 495.

5. अ. तुलनीय - कबीर के पद - मैं सबनि मैं औरनि मैं हूँ सब.....
   या - हंम तौ एक एक करि जांनां .....
   या- पंचतत अबिगत थैं उतपना, एकैं किया निवासा....
   आदि.
   कबीर काव्य कौस्तुभ, पृ. 54,55.

करुणासागर द्वारा निरूपित जीव

करुणासागर के काव्य में जीव के संबंध में अनेक दृष्टियों से कथन किया गया है । वे वस्तुतः केवलाद्वैतवादी होने के कारण निर्गुण ज्ञानवादी संतों के प्रभाव से अवश्य प्रभावित होते हुए दृष्टिगत होते हैं । इसके साथ ही उनमें कहीं निंबार्क का भेदाभेद तो कहीं रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत दर्शन भी परिलक्षित होता है । वे कहते हैं कि प्रथम शरीर से हंस रूपी पुरुष विकार रहित था -

प्रथम हंसपुरुष अविकारी, पंचु देह ओर ले थी धारी ।
पेहेली देह निरंजन ते लीनी, तेजोमय तन मात्रा कीनी ।।
अगाध बोध- अंग 39-6.

दूसरा शरीर आद्य शक्ति की विभूति वाला, तृतीय प्रकृति संयुक्त और चतुर्थ तीन गुणों की विभूति वाला आवरण पहनकर स्थूल देह दृढ़ बनता है -

दुजी शक्ति आद्य विभूति, त्रीजी देह शक्ति समजुती ।
चौथी देह गुणमय समजुता, थूल तन के कारण मजभुता ।।
अगाध बोध- अंग 39-7

तात्पर्य यह कि पाँच तत्वों सहित पाँच प्रकार का दैहिक आवरण धारण करने से जीव मनुष्य देह में सुशोभित होता है ।

माया विशिष्ट चेतन कहलाता है और उससे रहित चेतन को आत्मा माना गया है । यहाँ आत्मा को अन्य संतों की भाँति ` हंस ` कहा गया है । वह अविनाशी है ।[1] वह पंचभौतिक शरीर में घाट रहित है । खुद वे [जीव] और धाता [ईश्वर] के शरीरों से पृथक है, उसका आदि और

---

1. सो हंसा हम ही अविनाशी, कैवल धाम पुरातन वासी ।
अगाध बोध - अंग- 40- ।

अंत नहीं है । [1] वह ब्रह्म रूप है, जैसे घाट में जाता है, वैसा रूप ले लेता है । वह निरालंब, निर्लेप और अविनाशी है, पर उसका ज्ञान उसे नहीं है । [2] जब से यह अंश [जीवात्मा] मायान्वित हुआ तब से दुखी हुआ है और मायावरण के कारण ही वह निज कर्ता को नहीं देख सका, किंतु आवरण के दूर होने पर 'मैं एक अद्वैत और अविचल हूँ' का बोध उसे होता है -

कसबी कसे कराल मायाहित होई,
द्वैतामण विलास विलासिक भये सकोई ।
निजआपु अहंमेव भेवतें गयें भूलाई,
नर तो नुरत संभाल आल तब भव हेत राई ।
अनवे कैवल अंश एकोहम् अद्वैत अविचल,
विपु रहित ते स्वयं कुबेर दुतीमत हर विरमल ।

विज्ञान सकृत मणिदीप- छप्पा-13- 1 से 4

यह अंश अंततः उसी ब्रह्म-सागर में लहरवत मिल जायेगा -

जे घर थी उलसे विलसे पुनी ते स्थल,
कैवल ना व्यापना थापनी
कहत कुबेर समझुको स्वे घर,
ना कछु पक्ष परा आपनी । [3]

सत्य स्वरूप तो उदय-अस्त रहित है, अद्वैत ब्रह्म है । उसमें से स्फुटित घाट या आकार रूपी बर्फ [अज्ञानी जीव] ज्ञान रूप सूर्य से दूर रहने के कारण दृश्यमान नहीं होता , इसीलिए एक ही ब्रह्म में द्वैत रूप विलास दृष्टिगत होता है -

---

1. त्रीजे तंतु विचारीये, आतमा जाण्य अनंत,
   थे धाता विपु वरजीत, ताय न आद्य न अंत ।
   तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-3-1
2. विज्ञान सकृत मणिदीप छप्पा-13- 3,4
3. कैवल विलास ग्रंथ- अंग- 37-5,6
   3.अ एवं आ के लिए अगला पृ.273 देखें .

ज्ञान आदीत उदे जीन के घट, ता घट के ब्रफ चीन समे,
खावत पीवत बोलत चालत, देखत ही पुनी देह आमे ।
आन सबे ब्रह्म के ब्रफ ही घट , ज्ञान ससुर से दूर भमे,
त्यौं त्यहुं भिन्न विलास दीसे ब्रह्म, छूटे ना द्वैत कुबेर क्यमे ।
कैवल विलास - अंग - 31-4,6.

इस प्रकार करुणासागर ने अंश-अंशी संबंध में आद्योपांत एकता स्थापित की है । वे सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में एक ही ब्रह्म को देखते हैं और उसे ही प्राप्त करने के लिए वे बार बार उपदेश देते हैं -

याही कु जीव कहे सब ही इत, हे जीत को तीत ब्रह्म असो,
जांमण शक्त छूटे जल की तब, वारी विचारता ब्रफ कसो ।
जंत जमे प्रकृति ब्रह्म के अप, देखी देहासक्त शास्त्र भसो,
शुद्ध विचार नीले प्रकृति शीत,वस्तु विलोकता जीवन सो । [1]

---

1. अ. तुलनीय - तोहे जनमि पुन तोहे समाओत सागर लहरि समाना ।
विद्यापति-सं. आनंदप्रकाश दीक्षित-पृ. 134.
आ. बूंद समानी समंद मैं, सोकत हेरी जाइ ।
कबीर काव्य कौस्तुभ- पृ. 40.

1. कैवल विलास- अंग 33-1-4
1. अ . तुलनीय - अबधू ऐसा ग्यान विचारं .....
या- साधो एक रूप सब मांही .....
या- डगमग छाडि दें मन बौरा ....
आदि पद.
कबीर काव्य कौस्तुभ- पृ. 61-64.

इसीलिए जीवात्मा को गुरु ज्ञान प्राप्त करने का आदेश बार बार दिया गया है, जिससे अगम कपाट खुल जाये और शुद्ध अद्वैत ब्रह्म के दर्शन हो सके । देखिये --

माटे सतगुरु सेवमेव आप बड बुधनो,
उघडे अगम कपाट ठाठ दरसे स्त्रव शुधनो ।
एकु न वस्त अजाण जाणपणुं प्रगट उरमें,
भेदी तत्व विभोग योग करे अंकुरमें ।
छे एहनो महिमाय प्राय सतगुरुनो आधे,
ब्रह्मा विष्णु महादेश शेष वरते गुरुना दे । [1]

माया

भारतीय दर्शन में माया विषयक सर्व प्राचीन विवेचन प्राप्त होता है । ऋग्वेद में माया का प्रयोग बदलने के रूप में हुआ है । [2] ब्रह्म एक है । वस्तुत: वह माया के नाम रूपात्मक अनेक प्रभावों के कारण ही एक से अनेक रूपों में प्रतिभासित होता है और इस प्रकार ब्रह्म का अनेक रूपों में प्राप्त होना माया है । माया ब्रह्म के नियंत्रण में रहने वाली शक्ति है ।[3] अत: वह स्वतंत्र नहीं है । गीता के अनुसार वह त्रिगुणात्मक है । इसके तीनों गुण जीव को बाँधते हैं । अत: वही जीवात्मा के बंधन का कारण है । [4]

निर्गुणवादी संत कवियों ने भी माया को ब्रह्म की शक्ति माना है । उसे ही जीव के बंधन का कारण बताया गया है । उनके अनुसार जीव का अहं, मोह, ममता, काम क्रोध आदि माया के कारण ही है, इसलिए वह जीव

---

1. विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा-16.
1.क. हंस तालेवा- अंग-1 1,2,3,5, अंग-10-3 साखी-7
2. यन्द्रो मायाभि: पुरु रूप ईयते-6,47,18
3. श्वेताश्वतरोपनिषद-1-10.
4. गीता-14-5

को लक्ष चौरासी योनियों में भटकाती है । वह सर्वव्यापिनी होने से कोई उससे बचा नहीं है । इस संबंध में कबीर ने कहा है --

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घांणि ।
कोई एक जन ऊबरै, जिन तोडी कुल कांणि ।।

संत सुधासार-वियोगी हरि-पृ. 140

संतों ने उसे झूठी और नश्वर कहा है । गुरु नानक के शब्दों में --

माइआ मोहु सभु कूड है, कुडो होई गइआ ।[1]

उसका सुख अल्पकालीन है ।[2] इस प्रकार माया के संबंध में अनेक प्रकार से कही गई बातों के आधार पर निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि माया ही जीव के बंधन का, अज्ञान का एक मात्र कारण है । गुरु द्वारा अद्वैत ब्रह्म का ज्ञान जीव को तभी होता है, जब वह माया के आवरण से रहित हो जाय ।

करुणासागर भी शंकर के मायावाद से प्रभावित थे । उन्होंने भी अपनी रचनाओं में माया के कारण ही जीव के अज्ञानी, दुःखी, लोभी, कामी, क्रोधी आदि होने की बात कही है । माया के बंधन के कारण ही वह अपने नित्य शुद्ध स्वरूप की झाँकी नहीं कर पाता । अस्तु, यहाँ इस दृष्टि से उनके माया संबंधी विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

इसी माया से समस्त चौदह लोकों का निर्माण हुआ है । अतः इसकी सर्वव्यापकता स्वयं सिद्ध है -

ए सहु मंडप मायनी, कायनी करम कलेश ।
स्थावर जंगम जीवनी, उपजत परम परेश ।।

हंस तालेवा- अंग- 28-6

---

1. नानका वाणी- डॉ. जयराम मिश्र, पृ. 468.
2. दादू माया का सुख पंचदिन, गव्यौ कहा गँवार ।
संत सुधासार-पृ. 449.

यह माया एक ही ब्रह्म रूप इंड से उत्पन्न हुई है । जीव को यही अपने गुणों से बाँधे रखती है और उसमें भेद बुद्धि भी यही उत्पन्न करती है ।[1]

महानिधि रूप अखिल ब्रह्म में माया नाटकीय ठाठबाट से रहती है । अज्ञानी जीव यह नहीं समझ पाता कि माया रूप यह समस्त जगत चैतन्य ब्रह्म से ही ओतप्रोत है --

आत्म अरक उघोत उजेश न कीने जांन्या ।
महानिधिना नाटठाठ ते सत करी मान्या ।।
विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा-57

माया सर्वत्र है, उससे बच पाना बड़ा ही कठिन है । उसने ब्रह्मा, विष्णु महेशादि को भी अपने प्रभाव से , अपनी छाया से मुक्त नहीं छोड़ा ।[2] इस संबंध में और भी कहा गया है --

स्वामी नाहां सेवक पखते राखे सहीने,
इश्वर तांहां इच्छाय चरण ते पकडे घइने ।
जोगी तांहां जोगांण्य, आंण्य ते मेटे नांही,
सती थइने शीश इशनी रहेते मांही ।
रहे इशनी मांहांय जहाँ जेवी तहां तेवी,
कहे सत कुबेर रूप अनंते देवी ।
विज्ञान सकृत मणिदीप - छप्पा- 59.

यह माया खुद का शौक पूरा करने के लिए पंच तत्वों की चौसर बिछाकर छल-प्रपंच के दाव खेल रही है । चौदह लोक रूप बाजारों की चौसर खेलने के लिए विकट माया ने अपने लंबे हाथ फैलाकर दस अवतार रूपी ` पासे ` फेंके हैं । इस खेल में वह खुद ही हारती है और जीतती भी खुद है -

मांड्यो चोपट चोक शोख ते पंच तत्व को,
भिन्न भिन्न आकाश बास चोपड के खांको ।

---

1. विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा-50
2. सकर्ताभाष्य-चुंदडी पद-1

नाख्या हाथ पसार पासा ते दस अवतारा,
कवि पंडित सुर देव सकल सब सौंघट सारा ।
जुवो मायानो खेल, बेल नहि संगे सामा,
हारे जीते आप दाव ते पोते रामा ।
पोते रामा दाव, भावसु खेले शोखे,
कहे सत कुबेर फेरी फेरी पासा नाखे ।

विज्ञान सकृत मणिदीप - छप्पा- 63

माया में अपार शक्ति है । निर्वाण रूप ब्रह्म ने ही ` नटडी ` माया का रूप धारण किया है । अतः ऐसा कोई समर्थ बाजीगर नहीं है जो उसके बल को जीत सके । ब्रह्मपुर, कैलासपुर और वैकुंठ में भी माया निवास कर रही है । चौदह लोक को माया अनेक रूप से नचाती है । अतः सर्व लोक में माया ही रमण कर रही है -

भइ नटी निरवांण्या जांण्य ते अति अपरबल,
नहि बाजीगर कोई सांम्रथ जीते येहेनुं बल ।
अजपद ने कैलास वास पर वैकुंठ गौलोक ,
भली नचावे नाच तासनु समे एरी लोक ।
कही जमाड़े जगत मगन मन नर्या गमत्य,
कहे सत् कुबेर जक्त मायानी रमत्य ।

विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा-63

माया की गति अकल होने के कारण वह सूक्ष्म है कि स्थूल यह कहना संभव नहीं । जप, तपादि साधना पद्धति में भी वही है । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओं में भी वही है । अतः जिस प्रकार बाघ के पंजे से छटक पाना कठिन है, उसी प्रकार उससे मुक्त होना भी बड़ा ही दुष्कर है । वह सदैव बाल्यावस्था में रहने के कारण वृद्धत्व को प्राप्त नहीं करती -

अकल कली न जाय कांय ते सूक्ष्म स्थूल,
अरध उरध ने मध्य विध्य नहि डाल न मूल ,

जप तप साधन सोय सकल इन आगल चाला,
सप्त ससोपति जाग्र व्याग्र थइ डसती बाला ।
डसियो बाला सकल सब विकल कीयो बेहाला,
कहे कुबेर सब कोय फेरवे येहेनी माला ।
विज्ञान सकृत मणिदीप-छप्पा-67

जीव माया के प्रभाव के कारण ही ब्रह्म को जान नहीं पाता । इस संबंध में करुणासागर कहते हैं -

राम रहीम आप होई बैठी, छलबल कारन परदे पेठी ।
तुमकु छलिया काजी मुल्ला, परदे हुरमा आप रसुल्ला ।
परदे हे सोतो हम कीनी, महंमाया तुमकु नहीं चीनी ।
हाल हजूरना देख्या नजरे, ज्ञान किताब परै क्यौ मजरे ।
अगाध बोध- अंग 35-2,4

उपर्युक्त माया विषयक करुणासागर की धारणा के अनुसार कहा जा सकता है कि उन्होंने भी निर्गुण संत कवियों की भाँति ही माया शक्ति को जीव और ब्रह्म के बीच एक परदा या आवरण के रूप में देखा है । जीव इसीसे मोहाविष्ट होने के कारण असत्य वस्तुओं को सुख-रूप मानकर अनेक जन्मों तक दुःखों को भोगता है । माया की शक्ति अपार है, वह भी ब्रह्म की भाँति सर्वत्र व्याप्त प्रतिभासित होती है । सद्गुरु की कृपा से ही उससे मुक्ति मिल सकती है, क्योंकि सद्गुरु ही जीव की द्वैतमूलक दृष्टि जो माया के कारण है, दूर करके एक अद्वैत परब्रह्म के दर्शन करता है ।

जगत

अद्वैत मत के अनुसार ब्रह्म ही सत्य और जगत मिथ्या है । जगत परिवर्तनशील होने से त्रिकालाबाध्य नहीं है । समस्त संसार का अधिष्ठान ब्रह्म ही है ।[1] उसीसे ही समस्त जगत की उत्पत्ति हुई है ।[2] माण्डूक्योपनिषद में

1. इंडियन फिलोसोफी-2 डॉ. राधाकृष्णन, पृ. 582.
2. इशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद-पृ. 85.

कहा गया है कि ब्रह्म की इच्छा से ही सृष्टि उत्पन्न हुई है ।[1] अतः उसका कारण भी ब्रह्म ही है ।[2]

उपनिषद साहित्य में जगत को ब्रह्म रूप माना गया है । नाम रूपात्मक भिन्नता के कारण ही ब्रह्म जगत के रूप में दृष्टिगत होता है । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'ब्रह्मैवेदं - विश्वमिदं' जैसे उपनिषद वाक्यों के प्रमाण से यह सिद्ध किया गया है कि अखिल जगत ब्रह्म ही है । स्वरूप की दृष्टि से वह मिथ्या, असार, विनाशवान, अस्थिर और क्षणिक है । अतः इसे स्वप्न अथवा माया के सदृश कहा गया है ।[3]

निर्गुणवादी संत कवियों ने जगत की उत्पत्ति का कारण ब्रह्म को माना है ।[4] जगत असत्य होने से नश्वर, स्वप्नवत और मिथ्या है । अतः इसकी तुलना सेमल के फूल से की है ।[5] दादू ने कहा है अज्ञान के अंधकार के

---

1. इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टो विनिश्चित । आगम प्रकरण-8
2. श्वेताश्वतरोपनिषद 1-1
3. स्वप्न- मायासदृशेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता- मांडक्योपनिषद-1-7.
4. अ. लघु संसारु उपाइआ, सिरेसिरि धंधे लाइआ ।

   नानक वाणी- डॉ. जयराम मिश्र, पृ. 161.

   आ. कबीर ने इसकी उत्पत्ति ॐकार से मानी है -

   ॐकार जग उपजै, षिकारे जग जाई ।

   कबीर ग्रंथावली - श्यामसुंदरदास -पृ.96.
5. यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल ।

   कबीर ग्रंथावली - पृ. 16.

कारण हम इसकी सत्यता मानते हैं, परंतु यह मृगतृष्णा की भाँति असत्य है ।[1]

करुणासागर के मतानुसार जगत

आलोच्य संत कवि ने जगत की उत्पत्ति निरंजन और महामाया के योग से मानी है -

निजपदारथ निरंजन महामाया । अन्योन्य तीनु जग उपजाया ।।

पंचम श्वसंवेद-कंद-3-53.

परब्रह्म ने अपनी षडवृत्तियों के द्वारा समस्त संसार का निर्माण किया है । परब्रह्म को जब द्वैत-विलास की इच्छा हुई तब उसने प्रथम प्रकाश ब्रह्मवृत्ति से तीन महातत्त्व उत्पन्न किये- अविकास, विकास और कुंभस्थ महातत्त्व । द्वितीय संजम भोगवृत्ति से तीन चक्र सत्व उत्पन्न किये - वर्गज्ञान, अनंग और काल चक्र सत्व । तृतीय इच्छा वृत्ति से बहत्तर तत्त्वों की उत्पत्ति की । इनमें से प्रथम निरंजन तत्व उत्पन्न किया । निरंजन तत्त्व से अव्याकृत तत्व उपसृष्ट किया । इस अव्याकृत तत्त्व से दो कारण तत्त्व उत्पन्न हुए । एक महाकारण तत्व और दूसरा आनंद कारण तत्व । इन दोनों कारण तत्त्वों से चौतीस तत्व पैदा हुए । प्रथम आनंद कारण तत्त्व से प्रकृति तत्त्व उत्पन्न हुए । इस प्रकृति तत्त्व कारण से तीन गुण पैदा हुए - सत, रज और तम । तमो गुण से दस काल तत्त्व- स्वभाव, कामना, आक्रांत, आश्चर्य, पृथक, विपरीत, अज्ञान , राग, द्वेष और वृद्धि अंत काल उत्पन्न हुए । रजो गुण से दस आकांक्षाएं - श्रवण, सुगंध, निरीक्षण, क्षुधा पिपासा, उच्चार, शीतोष्ण, ग्रहण, विषय, मलविसर्जन और गमन उत्पन्न हुईं । सत्व गुण से पाँच अंतःकरण और पाँच अवस्थाएं उत्पन्न हुईं । इस प्रकार चौतीस तत्व आनंद तत्त्व कारण से सृष्ट हैं । महाकारण तत्त्व से घनंज तत्व कारण हुआ । इससे तीन गण- अहंकार, अचंत

---

1. सोवत सुपिना होई, जागै थैं नहि कोई ।
   मृगतृष्णा जल जैसा, चेति देखि जगु ऐसा ।
   सुत सुधासार-पृ. 431.

और अवकाश गण उत्पन्न हुए । अहंकार गण से पंचभूत तथा पंच मात्राएं उत्पन्न हुईं । स्वाकाश गण से पंच व्यवस्था- शांत, शील, सहज, संतोष और समता संभ्रसण - और पंच संभ्रसण - स्थिति, उदार, गलित, कुंभ और पंचमी सामान्य व्यवस्था उत्पन्न हुईं । अचंत गण से दस भावनाएं - अहं, विसर्जन, निद्रा, अंधतम, अचेत, उचाट, अभाव, मौन और असामर्थ्य - उत्पन्न हुईं । इसी प्रकार महातत्त्व कारण से चौबीस तत्त्व हुए । इस प्रकार बहत्तर तत्त्वों की उत्पत्ति के बाद परब्रह्म ने क्रियावृत्ति पैदा की । इस वृत्ति से सभी तत्त्वों के विभागों का वर्गीकरण करके पिंड और ब्रह्मांड के माध्यम से ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा कूर्म, मेंढक और शेष पर्यंत स्थावर जंगम कीट पतंग और देव शरीर तथा चौरासी लक्ष घाटों की उत्पत्ति की, किंतु ये घाट जड़वत् होने से वृद्धि रहित रहें । अतः कर्ता ने पंचम संजीवन वृत्ति प्रत्येक घाट में उत्पन्न की, इससे वे वृद्धिगत हुए, किन्तु फिर भी जड़ तुल्य ही रहें । अतः छट्ठी 'कर्ता अंशवृत्ति' रचकर स्वयं के अंशों को प्रत्येक घाट में प्रेरित किया और घाट सक्रिय हुए ।[1] इस संबंध में लिखा है -

कर्ता उमंग खट वृत कृत , कीयेहु सकल विस्तार ।
बोहोरु विविध भिन्न भिन्न तनु, कीये जीनु कहुं अनुसार ।।
पंचम श्वसंवेद - कंद 6-1

करुणासागर ने प्रस्तुत जगत को ब्रह्ममय ही माना है । अज्ञान अथवा माया जनित द्वैत बुद्धि के कारण ही उसे हम जगत कहते हैं -

एक दशावंत अनुभवी । भवमें नव भरमाय ।
आप सहित आयु नहि । कहेनो करे प्रतिहाय ।।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-11-1.

तथा

जल थल मांही आप है, धरणी गगन मोझार ।
स्थावर जंगम आप है । आप सकल संसार ।।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-12-2

---

1. पंचमश्वसंवेद -कंद-6.

प्रस्तुत जगत में ब्रह्म के दर्शन ज्ञान-चक्षु के द्वारा ही हो सकते हैं । चर्म चक्षु से जो कुछ दृश्यमान हैं वे सब नश्वर पदार्थ हैं । इस संबंध में वे कहते हैं --

दो दो लोचन सरवकु । बिरखन कु पद छिन्न ।
चतुर लोचन विद्या तणां । भासत भिन्नाभिन्न ।।
जम छे तम दरसे नहि । ज्ञान नेत्र विना कोय ।
जो दरसे सो अलप है । दृष्ट पदारथ सोय ।।

तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-13-2,3

प्रस्तुत दृश्यमान जगत वस्तुतः सत्य नहीं है, किंतु अज्ञान से उत्पन्न उस परम सत्य का भासरूप विकार मात्र है -

जहां लगी जोवा ज्ञानवा, दरशन दरशीहार ।
तहां लगी वस्तुता नहि, भासो आप विकार ।।

हंस तालेवा- अंग 49-6

प्रस्तुत विश्व उसी एक परब्रह्म का विवर्त मात्र है , आलोच्य संत कवि ने इसे उसकी लीला के रूप में देखा है -

वस्तु रूप विलस्यो आप, सदा स्थिर नहीं उथाप ।
बहुविधि विस्तर्यो विलास स्वामी सकल सर्व वास ।
रोम रोममां ब्रह्मांड, सप्त दिप ने नव खंड ।
धरीया रूप नर ने नार, लीला अनंत अपार ।
जम बट बिजनो विस्तार, एवो कारमो संसार ।

भजन सागर- । पृ. 151.

इस जगत को इन्होंने कहीं माया-शक्ति के खेल के रूप में देखा है -

एही सब साज सकल शक्ति के पसारा ।

भजन सागर-1 ,पृ. 66.

जिस प्रकार पानी का बुलबुला पानी में उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है, उसी प्रकार यह विश्व भी अंततः उसी में लय हो जाता है -

ज्यों बोरंगा बार में उपजे बे अलपाय,
ये से चेतन ब्रह्म में, विश्व सकल लय थाय ।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-10-5.

परमात्मा के अतिरिक्त अन्य पदार्थों को क्षणभंगुर एवं नश्वर कहा गया है । जब तक जीवात्मा को अपने परम पद की प्राप्ति नहीं होती, तब तक कर्मों की उपाधि से रहित नहीं होता -

आन्य पदारथ अलप है, सोहं पद आद्य अनाद्य ।
कहे कुबेर पीयु परसता, छूटे करम की उपाध ।।
तिथि ग्रंथ ज्ञान शिरोमणि-तिथि-6-6.

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि आलोच्य संत कवि करुणासागर ने प्रस्तुत जगत को उसी एक परब्रह्म से उत्पन्न होकर अंततोगत्वा उसी में लय होना माना है । जीव के अज्ञान के कारण ही अखिल ब्रह्म सर्वत्र व्यापक ब्रह्म द्वैतरूप दृष्टिगत होता है । जगत क्षणिक और नाशवंत है । माया ही अपने मोहपाश से जीव को आबद्ध कर परमात्मा से विमुख रखती है ।

वस्तुतः जीव और ब्रह्म की एकता की भाँति ही करुणासागर ने ब्रह्म और जगत की अद्वैतरूपता को अनुभूत किया है ।

साधना पक्ष

गुरु :- बिना गुरु के सद्ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं । गुरु ही साधक अथवा शिष्य को सद्ज्ञान के लोचन प्रदान करता है । उसके बिना साधक अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर एवं विष से अमृत की ओर नहीं जा सकता । गुरु ही शिष्य की आध्यात्मिक साधना में उपस्थित बाधाओं एवं आशंकादि को दूर कर उसे अपने परम लक्ष्य तक पहुँचाता है । सद्गुरु की आवश्यकता के बारे में अखा ने कहा है -

सदगुरु सेन संभाले सो संजन मंजन तें मन ठोर न आवे ।
मंजन सों मल टारे ऊपर के भव भंजन गुरु ज्ञान बतावे ।
संतप्रिया - कवित्त 17

गुरु में योग्यता होनी चाहिए । इसके अभाव में ` अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ` वाली कहावत ही चरितार्थ होगी । अतः गुरु कोई जैसा-तैसा व्यक्ति नहीं हो सकता । उसे सर्वांग तत्त्वज्ञ, सर्वमंत्र विधानवित, लोक सम्मोहक, प्रियदर्शन, देवोपम, सुमुख, सुलभ, स्वच्छ, भ्रमनाशक, प्राज्ञ, तर्क पटु, अंतर्लक्षी, सूक्ष्मदृष्टा, सर्वज्ञ, देशकालवित, निग्रहानुग्रहक्षम, बोधक, शांत, दयालु, जितेन्द्रिय, षडारिवर्ग-जेता, पात्रापात्र-ज्ञाता, निर्मल, नित्य संतुष्ट, साधुप्रिय, भक्त-वत्सल, शिष्य-साधक, रागद्वेषभय-क्लेश-दंभादि-परित्यागी, स्वविद्यानुष्ठान-नरत, गुण-दोष-विभेदक और स्वार्थरहित होना चाहिए ।[1] इसीलिए तो भारतीय धर्म-साधना मार्ग में गुरु को गोविंद का स्वरूप कहा गया है । कबीर ने कहा है कि गुरु एवं गोविंद में कोई अंतर नहीं, केवल आकार मात्र से ही भिन्नता लक्षित होती है, अपने अहंकार का त्याग करके जीते जी मर जाओ, तभी तुम्हें वह परमेश्वर प्राप्त हो सकेगा ।[2] अखा ने भी गुरु-गोविंद की एकता के संबंध में कहा है -

` गुरु गोविंद गनत नहीं न्यारा `
संतप्रिया-8

तथा

गुरु गोविंद नहीं नर न्यारा अखो कहे सेवे सो सबे सुच पावे ।
संतप्रिया- 17

यही कारण है कि भारतीय संत कवियों ने मंगल कार्य में सर्वप्रथम गणेश वंदना की भाँति ही जीवन के प्रत्येक कार्य में ` गुरु पद ` को प्रथम स्थान दिया है ।

---

1. हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति- श्यामसुंदर शुक्ल-पृ. 281.
2. गुरु गोविंद तो एक है, दूजा यहु आकार ।
आपा मेटि जीवित मरै, तो पावै करतार ।। कबीर ग्रंथावली, पृ.3

डॉ.श्यामसुंदर शुक्ल ने इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा है कि " मध्य-कालीन समूची भक्ति साधना, चाहे वह तांत्रिक हो या अतांत्रिक, गुरुतत्त्व की बहुत आभारी है । क्या बौद्ध, क्या जैन, क्या शैव और क्या वैष्णव - सभी संप्रदायों ने जी खोलकर गुरु का गुणगान किया है । ------- गुरुदेव का यह महत्त्वपूर्ण स्थान हिन्दी की सगुण और निर्गुण धारा में समान रूप से बना रहा । "[1]

कायम पंथ -कैवल संप्रदाय- के अंतर्गत ज्ञानमार्गीय साधना पद्धति को विशेष महत्त्व दिया गया है । इस पद्धति में परमात्मा की प्राप्ति के लिए गुरु कृपा, संत समागम, विषयों से विमुखता, बाह्याडंबरों का त्याग एवं भजन-कीर्तन आदि विषयक अंगों का निरूपण किया गया है ।

करुणासागर की आध्यात्मिक भावना

गुरु :- कैवलवेत्ता के परमविशेष अंश को ही परमगुरु की संज्ञा प्रदान की गई है । जगत को अज्ञानांधकार से मुक्त कर अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए कैवल प्रभु परम विशेष अंश [परमगुरु] को पृथ्वी पर भेजते हैं -

जभी निजपति करुणामये दयावंत दलहेर ।
अपने अंश उबारन, पठयेहु पुरुष कुबेर ।।

गुरु पद का अधिकारी कौन हो सकता है ? इस बारे में कहा गया है कि जो गुण से रहित है, जो माया के अभिमान को नष्ट करता है वही गुरु है ।[2] गुरु आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करता है, जो वस्तु उत्पन्न नहीं होती एवं नश्वर नहीं है, उसे वह बताता है ।[3] जगत के जीव स्वप्न रूप अज्ञान दशा को भोगते हैं, उन्हें वह कृपापूर्वक जाग्रत करता है, साथ ही उसे ` निजपति ` से मिलाता भी है -

---

1. हिंदी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति , पृ. 280.
2. अगाधबोध-16-1.
3. वही-4,5,7.

येसे ही जीवभव भुगतत, सुपन निंद अज्ञान ।
सदगुरु मेहेर तेरन जींहु, जाग्रत करन कु ज्ञान ।।
जाग्रत भये सो जानीये, जुग जाहेर जेही जंत ।
निजकर्ता ओरु आपनपु, दरसे एक सतंत ।।
परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु-6-1,2

ज्ञानविशेष की दृष्टि से चार प्रकार के गुरुपदों का उल्लेख किया गया है - परोक्ष गुरु, गुरु, सदगुरु और परमगुरु ।[1] परोक्ष गुरु शास्त्र और वेदों के ज्ञान को परोक्ष रूप से कहता है, गुरु परोक्ष पद और प्रत्यक्ष पद का भेद बताता है,[2] सदगुरु अंश को निजपति की ओर उन्मुख करता है ,[3] तथा परमगुरु साधक की निजपति से भेंट - साक्षात्कार - कराता है ।[4] परमगुरु को अन्य गुरुओं से श्रेष्ठ कहा गया है -

जेही पति परम मरम मुदे सुधो बतावन सेर,
जीनकु कुहत परम गुरु, सब गुरु शीखर समेर ।[5]

परमगुरु की गति को कोई भी समझ नहीं सकता तथा उसका मूल्य भी कोई नहीं दे सकता -

अकल कलागत तेहुन की ना आवत किंमत मांहांय ।
ज्यौं पारस के, दखकी, अंत नहि कछु कांहांय ।।[6]

ज्ञानी गुरु के लक्षण की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा गया है कि वह त्यागी होता है, सांसारिकता रहित तथा सम दृष्टिवाला होता है । उसमें

---

1. परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु-6-94.
2. वही-106
3. वही-112.
4. - वही-117.
5. वही- 120.
6. वही - 177.

राग द्वेष नहीं होता, वह इन्द्रियों के कर्मों से अलग माया रहित तथा प्रेमरहित है -

त्याग ना दीसत ग्रेहेने ग्रहाग, समदृष्टि नहि द्वेष ने राग ।
इंद्रिना अनुकरनने परे, निरालंब निर्लेप विचरे ।।

अगाध बोध - अंग- 17- 2

ज्ञान संप्रदाय में गुरुपद की अवर्णनीय महिमा की ओर अनेक रूप से दृष्टिपात किया गया है । कोटि कल्प पर्यंत जप तप करने के उपरांत भी ब्रह्म पद प्राप्त करना अति दुर्लभ है, किन्तु सद्गुरु की भक्ति से वह मार्ग सहज हो जाता है । देखिए -

कोटि कलप जप तप करे , दुरलभ पावही ब्रह्म ।
सो सत्गुरु निज भक्ति से, तुरत बतावही मर्म ।।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-अंत दोहा- 2

सद्गुरु मोक्ष का दाता है । उसकी शरण में जाने से निर्वाण पद की प्राप्ति होती है । गुरु कृपा से जीव पाँच-पच्चीस प्रकृतियों से मुक्त हो जाता है, आशा तृष्णा, हर्ष-शोक आदि से रहित हो जाता है । ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में जितने शत्रु हो उन सबको गुरु अपने ज्ञान-खड्ग से नष्ट कर देता है ।[1] शिष्य को चाहिए कि वह सदैव द्वैव भाव से गुरु में रहे ।[2] कबीरादि संत कवियों की भाँति ही करुणासागर ने भी सद्गुरु को गोविंद के रूप में देखा है । ऐसे परमगुरु को अखंडानंद, सच्चिदानंद, आकाश व्यापी, ज्ञानचक्षु, अच्युत, अजर आदि ईश्वरवाचक गुणों से विभूषित किया गया है ।

साधना पद्धति

ज्ञान संप्रदाय में ज्ञान भक्ति और वैराग्य का समन्वय किया गया

---

1. सकृत परम प्रकाश मणि भाष्य- रवेणी पद- 2
2. हंस तालेवा - अंग 35-4.

है । यहाँ वैराग्य धारण करने का अर्थ यह है कि साधक को पदार्थों में से वृत्ति को हटाकर निजकर्ता में ही उसे लगा देना चाहिए । भक्ति से तात्पर्य है भक्त के द्वारा निजकर्ता का भजन, स्मरण तथा उपासना करना । अपने आपको जानना तथा निजकर्ता की वृत्तियों सहित कर्ता को पहचानना ही ' ज्ञान ' का रूप है । निजकर्ता की कृति की महत्ता को निरखकर उसकी गंभीरता की हार्दिक सराहना करते हुए गदगद होने की प्रक्रिया को उपासना कहते हैं । [1]

आलोच्य संत कवि करुणासागर ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के समन्वय को सुंदर रूपकात्मक ढंग से वर्णित किया है । जब वृक्ष उदित होता है, तब उसके दोनों पर्णों के मध्य जिस प्रकार अंकुर रहता है, उसी प्रकार भक्ति और वैराग्य रूप दो पत्तों के बीच आत्मज्ञान रूप अंकुर सन्निहित है । दोनों पर्ण और अंकुर के एकरस होने से वृक्ष की वृद्धि होती है, ठीक वैसे ही भक्ति और वैराग्य में ज्ञान एकमेक होता है, तभी साधकों के ज्ञान की वृद्धि होती है-

जेसे ही पत्र उदीत वृक्ष, युगल भक्ति वैराग ।
मध्य डीर अंकुर वित्त , सो निज ज्ञान विभाग ।।
संजम त्रिये एकता रस, बढत वृक्ष अदभुत ।
सहित भक्ति वैराग तीमु, ज्ञान सरल अनुसुत ।।

ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-दोहा 2,3

भक्ति और वैराग्य को ज्ञान का आभूषण कहा गया है । [2] तीनों में प्रथम ज्ञान की उत्पत्ति मानी गई है । ज्ञान से शुभ कर्मों के प्रति प्रेम होता है । यह प्रेम भक्ति पद रूप है तथा वैराग्य त्याग का अंग रूप है । ज्ञान को इसीलिए अन्य दोनों प्रकार की उपासनाओं से श्रेष्ठ माना गया है और उसी प्रकार ज्ञान के मार्ग को उत्तम , त्याग को मध्यम तथा भक्ति मार्ग को कनिष्ठ कहा गया है -

---

1. सकृत परम प्रकाश मणि भाष्य - हिन्दी - पृ. 35,36
2. ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- दोहा -4

उत्तम कु लक्ष ज्ञान के मध्यम कु सर्व त्याग ।
कनिष्ट कु क्रिया भक्ति है, नाम रूप गुण भाज्य ।।
ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-दोहा -।।

निजकर्ता की प्राप्ति के लिए हृदय को विकार रहित करना चाहिए, इससे चित्त शांत या स्थिर हो जाता है और ऐसे ही शुद्ध चित्त में प्रभु की झाँकी होती है । इसके लिए गुरु की आवश्यकता भी रहती है, क्योंकि सद्गुरु ही धोबी की भाँति जगत के मल को वैराग्य रूपी साबुन से सत्य रूपी पत्थर पर धो देता है ।[1]

अनन्य भक्ति [एकनिष्ठ भक्ति] भावना की आलोच्य संत कवि ने अपनी रचनाओं में बार बार सराहना की है । ऐसी भक्ति से ही निजकर्ता प्रसन्न होता है -

भक्ति अनिन एही जेही कोहु कीजे,
अंत:करण भजन हम रीझे,
रीझहु भक्ति अनिन करे जेहु,
कैवल मोक्ष परम हम देहु ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ-47,48

भक्ति चिंतामणि, कल्पतरु और कामधेनु के समान होने के कारण उसके घर में सभी प्रकार के सुख उपलब्ध होते हैं । जिसके घर में भक्ति है उसके वहाँ आठों सिद्धियाँ और नवों निधियाँ विद्यमान होती हैं ।[2]

करुणासागर ने निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म तथा अवतारी देवी देवताओं को परमब्रह्म नहीं माना है, इसलिए इनसे संबंधित सांप्रदायिक उपासना विधियों एवं तत्संबंधित कर्म-कांडादिक क्रियाओं को भी नकारा है -

आ भवके जेही धर्म अनेक ही, करम कांड के जबही ।
करी करी मुवे सकल जगके जन, तुम कु मीले न कबहीं ।।

---

1. ज्ञान भक्ति वैराग्य निरूपण ग्रंथ- दोहा -17
2. विश्वप्रम विध्वंस निधि-अंग-19-3.

लोक सकल तो करी उपासन, पावन गुण अवतारु ।
पुनि राखत है लक्ष ब्रह्मके, ते नहि भव रत्रजनारु ।।
विश्वभ्रम विध्वंस निधि-अंग 19-3,4

धार्मिक अंधश्रद्धा के कारण ही जो लोग ज्ञान एवं वैराग्यहीन भक्ति द्वारा प्रभु से साक्षात्कार करना चाहते हैं, उनसे प्रभु दूर रहते हैं । अमुक तीर्थ, व्रत तथा पुण्यदान करने से पापों से मुक्ति मिलेगी यह संभव नहीं है ।अतः संत कवियों की भाँति ही बाहरी उपासना विधि को यहाँ स्थान नहीं है । अतः ज्ञान और वैराग्य युक्त भक्ति भावना से ही वासना का क्षय होता है और जीव को निजधाम की प्राप्ति होती है । अस्तु, ज्ञान को अन्य सभी उपासना पद्धतियों में श्रेष्ठ माना गया है -

त्यों कुल ज्ञान सकल शिर, ब्रह्म ज्ञान अति मोहोट ।
पण कैवल चिंतामणि, कोहु न तिन की ओट ।।
परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु- केतु 8-154

तात्पर्य यह है कि ज्ञान के मस्तक पर पारसरूप ब्रह्मज्ञान सबसे बड़ा है, किंतु चिंतामणि रूप कैवल ज्ञान की तुलना कर सके ऐसा कोई ज्ञान नहीं है ।

साधु-संगति स्मरण और आचार-शुद्धि

कायम पंथ में निजकर्ता की प्राप्ति के लिए साधु-संतों की सेवा, उपदेश, श्रवण भजन-कीर्तन, निजकर्ता संबंधी ध्यान-जप तथा हृदय शुद्धि को आवश्यक माना गया है । इस संबंध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं । भक्तजनों को प्रातःकाल स्नानादि करके परमगुरु के चरणारविंद में प्रेम रखते हुए दिव्य परम गुरु का ध्यान करना चाहिए -

सहेज स्वभाव चहाव गुरु चरना, कैवल कैवल जाप उचरना ।
करी स्नान ध्यान उर गुरुका, सहेज दशा साधन हरु भरुका ।।
अगाध बोध - अंग 83-21

भक्तों को उठते-बैठते, हिरते-फिरते संत पुरुषों की सेवा करना

चाहिए , इस प्रकार सहज रीति से उपासना करने वाले मुमुक्षु कैवल्य रूप सर्जन-हार की गति को प्राप्त कर सकते हैं -

उठत बेठत हरतां फरतां, संतन की सेवा रहीये करतां ।
सहेज उपासन सूक्ष्म जनकी, सोही पावत गति सरजन की ।।
अगाध बोध-अंग 83-22.

प्रस्तुत ज्ञान मार्गीय या कैवल्य संप्रदाय की उपासना पद्धति में भक्त जनों को वैराग्य भाव पूर्वक काम, क्रोध, मोह, अहंकार, हर्ष, शोक और अभिमानादि विकारों का त्याग करके पवित्र आचार-विचारों का सेवन करना अति आवश्यक माना गया है । साथ ही असत्य, प्रपंच, चोरी, व्यभिचारी जीवन तथा कपटी जनों का त्याग भी आवश्यक माना गया है -

काम क्रोध-मोह तजी अहंकार, हरख शोक अभिमान विकारा ।
शीलवते लक्षे निशदिन ही, सो साचे हमरे हरिजन ही ।।
जुठ प्रपंच चोरी ओरु हेरि, हरिजन सो उन रहे न नेरी ।
साकुट संग न कर ही मेलापु, जिन संगे बढे शोक संतापु ।।
अगाधबोध - अंग-83-23,26

हिन्दी के संत कवियों ने भी ईश्वर-प्राप्ति के लिए हृदय शुद्धि को आवश्यक माना है क्योंकि यदि अंतःकरण विकारों से भरा हुआ है तो ईश्वर-प्राप्ति संभव नहीं । बाहरी धार्मिक स्वांगों से ईश्वर नहीं मिलता -

चलौ विचरी रहौ संभारी, कहता हूँ पुकारी,
रामनाम अंतर गहि नांहि, तौ जनम जुवा ज्यूं हारी,
बाहरि देह षेह लपटानी भीतरि तो घर मूसा,
गालिब नगरी गाँव बसाया दाम काम अहंकारी ।।
कबीर ग्रंथावली- सं. पुष्पपालसिंह, पृ. 369.

तथा- स्वांग सेत करणी मनि काली, कहा भयो गलि माला घाली,
बिन ही प्रेम कहा भयो रोये,भीतरि मैल बाहार कहा धोये ।
कबीर ग्रंथावली- सं. पुष्पपालसिंह, पृ.415.

करुणासागर द्वारा प्रतीक रूप में स्वामीनारायण संप्रदाय के ढोंगी साधुओं पर किया गया प्रहार भी हृदय की इसी विकार जनित प्रवृत्तियों एवं वृत्तियों को उजागर करता है -

करम करावे कारमां, देखन ओरली आल,
तंत्र, मंत्र, धंत्र हरणी कांणे नांखेहु जीव जंजाल,
धंन्य लाभे परपंच रची, करही जक्त उपदेश,
जीवके कारज करनकु, लक्ष नहीं लवलेस ।
महामणि बोध- दोहा 155,156

कायम पंथ सहज साधना पद्धति में विश्वास रखता है, कठिन साधना पद्धति में नहीं । इस संबंध में करुणासागर ने कहा है " कितने अन्न जल का त्याग करते हैं, कितने नेत्र बंध करके ध्यानस्थ होते हैं तो कितने शरीर की चित्तभ्रम स्थिति में स्वयं के ज्ञान को भूल जाते हैं, कितने जड़ बन जाते हैं तो कितने ही श्वास और नाड़ियों की गति को समेट लेते हैं, किन्तु इस प्रकार निजकर्ता की प्राप्ति संभव नहीं है । [1] बिना आत्मज्ञान निजकर्ता की प्राप्ति संभव नहीं -

जब सब जीव जड ही तन पावे ,ज्ञानभक्ति फेरी कुन द्रढावे ।
बिनु निजज्ञान भक्ति बिना भवही, अति अज्ञान घोर होय सबही ।। [2]

' कायम पंथ ' अवतारवाद को ईश्वरवाद के रूप में नहीं देखता । अतः अन्य निर्गुण संत कवियों की भाँति ही करुणासागर ने अपनी रचनाओं में मूर्तिपूजा एवं तदसंबंधित विधि विधानों का विरोध किया है । वे कहते हैं -

---

1. अगाध बोध- अंग- 83-2,3,4,5
2.अ वही- अंग 84-15
आ. तुलनीय - कहत अखो बिन आप पहचाना मानु सुपने की लछमी सत्य मानी ।
संतप्रिया - सं. डॉ. रमण पाठक, पृ. 103

1 धात पांहाण प्रतभावी से, तेही फल कीयेहु प्रवेश,
बीहु जीव जीव सीर नाइया, गनी उर देव देवेश ।
जेही जप से जड देव भये, तेही द्वीज प्रेरनवाल,
आप रहे हुं नीज कंकर, जबी कहे-हुर-छपाल ।

परम सिद्धांत प्रणव कल्पतरु - केतु 2-11,12

तात्पर्य यह कि प्राण प्रतिष्ठा करने पर भी पाषाण-मूर्तियों में जीव प्रवेश नहीं करता, तथापि जगत के अंधजन उन्हें देवादि मानकर उनकी उपासना करते हैं ।

2 अदभुत ज्ञान हमारा, हो संतो अदभुत ज्ञान हमारा ।
कोई जाणे जाणनहारा .....
देवल देव पूजा विधि पाती, सोडस करम अचारा,
धुप दिप सजी अरध आरति, ए सहु ओरल्या वहेवारा
आसन मार पवन पूनि साधे, बंधे दश दरबारा,
बंकनाल चढी ज्योत जगावे, तो हु न बंचे कारा... हो संतो

भजन सागर, पृ.6

इस प्रकार करुणासागर ने स्त्री संग, व्यभिचार, अहं भावना, इन्द्रियगत सुखेच्छा आदि विषयक बातों पर कबीर की भाँति प्रहार किया है । नारी संग और धन संग्रह करते हुए भी जो अपने को त्यागी और वैरागी बताने का आडंबर करते हैं, उन पर किया गया व्यंग्य कितना प्रखर है -

नारी ओरु नांणा तणो जग देखन वैराग ।
ईछ अति अंतर गत्य ए परपंची त्याग ।।
दांम तजे त्रीय नहीं छीवे, ते कुण कज मठ जंजाल ।
तेहि वितराग के रेहेन कु, वनखंड वृक्ष विशाल ।।
दाम तेजे ओरु त्रीया तजे, तो कुण डर किये मेहेल ।
चाल्य काढी वीतराग की लोक रीझावन फेल ।।
नार न छीवे पुरुषकु, पुरुष न छीवे नार ।
उपर से अलगा रहे, पण अंतर वहेवार ।।

बोहोत प्रमोधी बोडकी, भरे ओर का ओर ।
रंडीबाज छीनावला, हंद्र हरामी खोर ।।
महामणि बोध - 3,46,47,61,63

निजपति की खोज करने वाले को समर्पण के लिए तैयार रहना है । करुणासागर कहते हैं -

चलना चहाव कोहु मम मारग, छोडो आ तन की आकांक्षा,
काटी शिश धरो धरणी पर, कुण राय, कुण रंका ।
भजन सागर, पृ.7

उक्त विचारों के संदर्भ में संत कबीर ने भी कहा है -

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि ।
सिर उतारी भुई धरे,ता पैठे घर मांहि ।।
तथा
जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ ।

बाह्याडंबर पर इनकी प्रहारोक्ति को भी देखिए -

ज्ञानी की गुंज अबुझ न बुझत, जीव दशा लेइ डोले हो ,
विचरण प्रहेणी रहेणी नर जैसे, ज्ञान कपाट न खोले हो ।
त्याग वैराग औरनकु देखावे, अंतर माया का ध्याना हो,
हंसा रे होड करी मूख बोले, करणी काग समाना हो ।
करत कथा नित्य पाठ शिव को, त्रष्ना गांठ न छूटे हो,
कहे कुबेर सत शब्द भजन बिना, पकर पकर जम लूंटे हो ।
भजन सागर - पृ. 54.

अतः कबीर की भाँति करुणासागर ने घट भीतर की आत्मसाधना को ही परम लक्ष्य माना है । इसके लिए जैसा पूर्व कहा जा चुका है कि गुरु एवं संत सेवा स्मरण और कृपा पर ही विशेष बल दिया गया है -

सूणी रे शब्द सतगुरु साहेब का,मेरा मन अलसाया हो ।
संसार सार छोडी दुःख दरिया,सत शब्द लहराया हो ।

ज्ञान खड्ग शत्रु सब छेदा, अहंपद आप घवाया हो ।
अगम अगोचर गावत घर कु, सो मठ घटमांही पाया हो ।
अज वैकुंठ कैलास पद कल्पित, सो सुख चित मांन आया हो ।
कहे कुबेर सतगुरु प्रतापे, निज कैवल पद पाया हो ।

भजन सागर-पृ. 56

तथा - जक्त सकल जुठे प्रति आया, कर्ता की गत कोइ नव पाया ।
भैरव भूत प्रेतकु पूंजे, आत्मतत्व कु कोई न बुझे
- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -
चैतन आप अचेत कु धावे, वेद विधिमां सब जुग भरमावे ।
देवी देवल को कर्ता पोते, ज्ञान न बूझे बीन आत्म उघोते ।

भजन सागर-पृ. 56

साधनापक्ष गत उपर्युक्त विचारलोक के आधार पर यह निःसंदेह ही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत संप्रदाय सेवित कुछ विशिष्ट विधि-विधान एवं वैचारिक मान्यता के होने के उपरांत भी संत करुणासागर ने अपने पूर्ववर्ती ज्ञानमार्गीय संत कवियों की भाँति ही निर्गुण - भक्ति परक मार्ग का ही प्रतिपादन किया है । यही कारण है कि प्रस्तुत ज्ञान-मार्गीय पद्धति में बाधक एवं विरोधमूलक अवतारोंपासकों के आत्मलक्ष्य से विच्युत बाहरी क्रियाकांड विषयक विधि-विधानों तथा एतद विषयक धर्मांधताओं का कड़े शब्दों में विरोध किया गया है । इनकी दृष्टि से बाहरी उपासना पद्धति से संबंधित फल वा मोक्ष की प्राप्ति तो कुछ समय के लिए अवश्य ही हो जाती है , किन्तु ` कैवल ज्ञान ` , ` कैवल पद ` वा ` निजकर्ता ` की प्राप्ति कदापि संभव नहीं होने पर साधक जीवात्मा को पुनरापिपुनः आवागमन के चक्र से मुक्ति नहीं मिलती । इसीलिए आलोच्य संत कवि ने अपने ग्रंथों में बार बार तथाकथित उपासना पद्धति को ` ओरल्या वहेवार ` कहा है ।

यहाँ एक बात और भी विशेष रूप से ध्यातव्य है कि साधक जीवात्माओं की क्षमता और योग्यता सापेक्ष सीमा एवं सामर्थ्य के अनुसार

ही निजकर्ता के जप, स्मरणादि की रीति-नीतियों को आनुपातिक रूप से न्यूनाधिक किया गया है । अस्तु, कहना न होगा कि प्रस्तुत केवल ज्ञान संप्रदाय भी कबीर व अखा द्वारा अनुमोदित एवं व्यवहृत सहज साधना मार्ग को ही अंगीकार करता है, जिसे ` कायम पंथ ` भी कहा गया है । ` कायम पंथ ` जहाँ शाब्दिक दृष्टि से शाश्वत मार्ग है , वहाँ ही तात्त्विक दृष्टि से आलोच्य ग्रंथों के आधार पर निःसंदेह कहा जा सकता है कि ` कायम पंथ ` अर्थात वह पंथ है कि जिस में यम के भय की किसी भी प्रकार की चिंता , खतरा या संदेह नहीं रहता । अस्तु, यम-यातना से मुक्ति प्रदान कराने वाला प्रस्तुत ज्ञान मार्ग ही ` कायम पंथ ` है, ऐसा कहने में कतई अतिशयोक्ति न होगी ।